

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

श्रीगोकुलेशटीकानुवादसहितं गृह्णते

सिद्धान्तरहस्यम् ।

सर्वानीश्चपदायकं पितृयरण्यमवने नभीने कृष्णवाक्मूलं आचार्यवाणीनुँ च्याच्यः
मूलो छुँ उधिरवाङ्मेतो अविप्राप्य यद्यपि अतिर्हर्गम् छे, तथापि “ आ भारो ए
ज्ञावान्मुहिमान् ज्ञानावारो । १-२ । ”

अथ ज्यारे ७ श्रीगोकुलस्त्वाभीम्बे स्वमनेनिवित्प्रभारत्युद्धुष्टिभित्तमार्गं
मन ५००, त्यारे ७ स्वमुम्भारविन्दृकरूपं श्रीभद्राचार्यनु ७ ते प्रकट कृतवानुँ सामर्थ्यं
प्राक्टचार्थं आज्ञा आपी, त्यारे आमदाययें पशु भगवन्निप्राप्यने ज्ञाने तेभ्यो—
आपेक्षी आज्ञाना प्रकारे ७ स्वप्राक्तु उरीने अगवदनिवनप्रकार॒ अक्तिमार्गनु अ
स्वमार्गायमिति स्वरूपने स्वमार्गायसे राप्रत्यरने भागी-रीय भजनना सार्कुवां
प्रमाणपूर्वकं निरूप्यां तत्त्वमार्गाय ते ने शब्दोमां इथिन प्रमी-पुरुषार्थं अनुष्टुप्यरूपं विवेका
पशु छे ते धर्मेना अने स्वप्राक्तिपुष्टिभाग्यनिवेदनना स-देहानाचार्य लित्तत्वे निरूप्यु क्षु ,
पूज्नमार्गामां पूज्नर्थं तन्मार्गेनप्रकारे सभ्मावित्तेष्यनिवित्पूर्वकं पूज्नउरण्य निरूप्यु
स्वप्राक्तिमार्गमां सर्वदैष्यनिवित्पूर्वकं सेवाप्रकार विचारित नयी एव चिन्ताए श्रीभद्राचार्यने ताँ
दृष्टीने स्वयं श्रीगोकुलेशो आनन्दमानकरपादमुषोद्धारिकृपे प्रकट थड्यने स्वसेवाप्रतिअन्धकरणीयनिवित्प्र
असाक्षात्करणमरणु ते प्रकारे उपस्थित्युँ उ जे प्रगारे अज्ञे असु जेमाना अप्राप्य देखप्रदेशे न अ
श्रीभद्राचार्यं तो सरहद्यमां भगवद्पुष्टिक्षेत्रे धरीने स्वक्षयेने पशु ज्ञानावनाने, ए प्रगारे भगवद्पुष्टि
सरखताए ऐष्ट थाप तद्वर्थं तत्र ए भासमा ए पक्षमां ए तिथिए अने ए समये श्रीगो
श्रीभद्राचार्यने उपदेश उर्गो तेना रापत्पूर्वकं कथनां “ आवणस्यामले पक्षं ” धत्यादि पदं
आज्ञा उरे छे.

श्रावणास्यामले पक्षं एकादश्यां महानिशि ।

साक्षाद् भगवता ग्रोक्तं तदक्षरश्च उच्यते ॥ १ ॥

श्लोकार्थः—श्रावणुना शुभं पक्षमां एकादशीनी भध्यरनिये साहाद भगवान्
अक्षरशः वद्य छे (१)

श्रीगोकुलेशटीका—“ आवणस्य”—श्रावणुना-अ पशु रिष्टुद्वै लोवाथी ता
पशु वैष्णव लोवाथी भगवत्सम्भन्धित्वं ज्ञानावने “ आवणु ” भास क्षेत्रे शुभत्वं ते
“ अमल ” लक्ष्ये भगवत्पक्षीय सर्वतुं निर्दृष्टता ज्ञानाव्यु. हने तिथितुं निर्दृष्टत्वं “ पक्ष
पक्ष निरूप्ये छे, एकादशी पन् एकादशोनिविवहेयनि गरिना छे, तेथी तिथि पशु ते ७
श्रीगोकुलमां अन्तरङ्गभक्तोना सर्वं पुरुषार्थं नी सिद्धिने अर्थे अने नदारा सर्वे ७ गोकु
सर्वपुरुषार्थं नी सिद्धिने अर्थे “ भगवनिशामां ज्ञ ग्राहन्वर्व छे, तेभ अन्त पशु श्रीभद्राचार्यार्थं
तदारा तदीयोतु सर्वपुरुषार्थं साधेत्वं तन्तुल्व ७ छे तेथी अन्त पशु “ भगवनिशामां भां ”

१ पूज्नमार्गं अने स्वप्रक्तिसेवामार्गनुँ वैदेश्य अव निर्दिष्टुँ छे ए अवश्य लक्ष

मां व्यूहरित 'साक्षात्' पुरुषोत्तमप्राप्तये ज भडोनुं ३

१०८ श्रीभद्रायार्थना उपदेश कर्त्ता ए जशुववाने 'साक्षाद्' ८.

धपि 'भगवता प्रोक्तम्' अठवार्थी ज चरित्यार्थ सने ५४ 'साद्'

च। आशय छ. 'भगवतननी व्याज्ञाना प्रकार अहु सम्भवे छ, अवाद्
प्राप्त, इवयित् स्वेनद्वारा अते इवयित् 'गिर समाधौ' न्याये आशावाश्यादार
जशुने छे, अत तो उक्तप्रभाविनप्रकारना अनावपूर्वः स्वयं 'साक्षात्' पुर्णप्राप्तये
उपदेश कर्त्ता ए जशुववाने 'साक्षात्' पह इच्यु 'उक्तम्'मां पूर्वे 'प्र' शब्दतु इथन
न १०८ श्रीभद्रायार्थनी प्रार्थनाए नहि-आविर्भवाने इथन इयुं ए जशुववाने
इत्याकथन सर्वे ने सम्यक प्रकारे हृष्ट्यारुण न थाय तेथी वाक्यार्थ ज सम्यग् हृष्ट्यारुण
ते प्रकारे पवर्त्ये इथनी पतिता 'तदभ्यरश उच्यते'ए इरे छे 'तत्'-पूर्वोक्त-
१०८क्षणश्चियारपूर्वद्-'उच्यते'-निरूपाय छे. (१)

इथना प्रतिना इरीते साक्षात्त्वभागीयभेवामां प्रतिअन्धः असाधारण देखना
प्रकारनी प्रथमत 'ब्रह्मसम्बन्धकरणात्' हृष्ट्याहिमे आता इरे छे.

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ।

सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः ॥ २ ॥

शोकार्थः—अक्षयन्यन्धकर्त्तुर्थी सर्वेना देखना अने अवता सर्वे देखनी निवृत्ति निश्चित
छे. है५ प०८निधि स्मृत छे. (२)

श्रीगोकुलेशटीका—'ब्रह्मसम्बन्धकरणात्'-अक्षयन्यन्धकर्त्तुर्थी—अन-भागीयार्थादारा
निवेदनथी-ज सर्वेषां सर्वेना देखना अते सर्वेना जूवना सर्वे देखनी निवृत्ति थाय छे.
१०८मा स्मृतिमां तपा भागवतमां 'अहं' 'परमात्मा,' अने 'भगवान्' ए शब्दाओ अक्षयिङ्ग-
ज्ञाप्रप्त-शब्दाय छे' ए श्रीभद्रायार्थना वचन्तुर्थी 'उपनिषद्भां ज 'ब्रह्म'प०८ पुरुषोत्तम-
प्राप्त छे अन्यत्र नहि' जेम शड॑ थाय तो अत 'ब्रह्म'प०८ उपादानमां तो आ
थाय छे. जेम अवभासा नासम्भव पर्म छे, तेम अत प०८ श्रीभद्रायार्थनिवेदनान्तर भर्तना
इप्रकारमां भगव-वैष्णव नहि-ज ए जशुववाने ब्रह्मप०८ धर्यु छे, अथवा जेम शीतामां
जायनी 'मूर्पनिषद्भ्यु ब्रह्मविद्यायाम्' हृष्ट्याहि वयनथी भगवदाम्भो उपनिषद्भ्यु छे तेम

रत्सम्बन्धकरणात्' हृष्ट्याहि वाथ भगवदाक्षये उपनिषद्भ्यु देवार्थी अन 'अहं'प०८ पुरुषो-
प्राप्त तद्योपार्थ धर्यु छे, तेथी आभिज्ञामां भासगवहीयत्वे ज 'सर्वदोषनिवृत्तिः'-
१०८-अते सेवायोग्यत छे, नेत्या ज अनु प०८ आजाइरे छे३ "जेने ए वरे छेतेहु ज कस्य "
मां भगवद्वर्ष्यु ज देखना अलापतु कारण छे, कारणु कै दोपरहित ज
सिनो छेतु छे, तेथी आभागीमां भगवहीयत्वे ज 'सर्वदोषनिवृत्तिनो छेतु छे.
मा पूर्वार्थ भूतशुद्ध्याहित्यनिवृत्तिप्रकार अहु ज कथा छे, ते विना डेनी शीतिए अत

. अत 'पृष्ठिभूषा' वर्ष ३ अहु ८-९मां भूषित श्रीगोकुलनाथज्ञनु पत्र वांचो. २. "वेदास्ते
गद्यादिः सागवते तथा । ब्रदेवति परमात्मनि भगवानिति शब्द्यते." ३. "यमवैष वृण्णते

ગુજરાત વિદ્યાપીઠ ગ્રંથાલય

[ગુજરાતી કૌંપીરાબિંડ વિનાગ]

અનુકૂળાંક ૧૯૭૮૩ વર્ગાક

પુસ્તકનું નામ ૧૨૧૨૫૧૦૭૨૨૮૪

વિષય ફેદેસુ

भगवदीयत्वमात्रे ज्ञ सर्व होपनिषति धटे' एम शट्टा थाय तो नेतु समाधा। निर्दृष्टपद्धर्थना सम्भन्धे ज्ञ सर्वदोषनिवृत्ति छे. सर्वाभाना निर्दृष्ट पुरुषेतत् तेथी श्रीमहायार्थे पशु आता करी छे के '१२२२२२. दोषवर्जित दोषपशु है न नथी' तेथी अकितामार्गां पुरुषेतत्त्वम् ज्ञ सर्व छेवाथी तत्सम्भवमात्रे ० थाय छे एमां काह पशु अयुक्त नथी. आ अर्थनुं युक्तत्व ज्ञाववाने 'हि' भागमां पुरुषेतत्त्वमा सम्भव्यनो. असाव छेवाथी तत्र-पूजामार्गां-के छे तेमनी सम्भावनानो पशु सम्भव लक्षितमार्गां नथी, तेवा ते होप 'दोषा-पञ्चविधा स्मृता' एम अनुवादे छे (२)

'सहजा' इसाहित्ये पू-यविधत्वने गणुवे छे.

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।

संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथञ्चन ॥ ३ ॥

अलोकार्थः—(१) सर्वज्ञ (२) देशकालोत्थ (३) लोकवेदनिरूपित (४) संयोगजः ५ स्पर्शज्ञ ए होप काह पशु प्रकारे भानवा नहि. (६)

श्रीगोकुलेश्वरीका—हेठली साथे ज्ञ उत्पन्न थाय ते 'सहज' होप, कारणु के होप पू-यविधैतिक छे, ते भूतोने भगवत्सम्भव्यनो. असाव छेवाथी होपे सम्भवे छे, अने पूजामार्ग भ भूतशुद्धयादित्या ते निवाशय छे, तेम ज्ञ पूजाप्रदेशमां-पूर्णर्थ आसनादिशुद्धिता विध नथी पूजाप्रदेशमां-पशु होप छे, अन्यथा, '२भूतो अपसर्पे,' '३आसनते पवित्र कर' इत्यहित्या देशहोपनु निराकरण न होय, तेम ज्ञ आलमां पशु होप छे, कारणु के '४प्रातर्होम करीने ज वा अक्षयत्वं करीने जा माध्याह्निक करीने पुरुषेतत्त्वमे पूजना' एम भन्तराजत्तुभूत्युद्धित्यन छ, पूजामां नियत अक्षयु विधान छेवाथी तहतिरित्त आलमां पूजन करवाथी कारहोप पशु सम्भवे छे, तेथी 'देशकालोत्थाः' पदे कुथुं. आ प्रकारे देशकालोत्थ होपते निरूपिते लोकवेदोत्थ होपाने 'लोकवेदनिरूपिता' पदे कुथे छे, '५पूजाहित्ये अक्षयोक्तने' ए वयनथी पूजाप्राप्य अक्षयोक्तां पशु '६हि अर्थनु 'अक्षयोक्तपर्यन्तना सर्व लोकानी पुनरावृत्ति थाय छे' ए वयनथी पुनरावृत्तिनो होप तत्र 'निरूपित छे, किंवा, पूजाथी पूजना अड्डते अग्निस्थापतपूर्वक वैदिकमन्त्रथी होमनिष्ठा' तत्र पशु न्यूनातिरिक्तहोप सम्भवे ज छे, अन्यथा, '७जेना समरण्युथो अने नामेऽकिनी प्रार्थना न सम्भवे. ए प्रकारे लोकवेदोत्थ होपनु निरूपशु करीने संयोगजहोपनु निरूपशु' ८ प्रत्याहित्ये करे छे, पूजामां अनिषेकार्थ भन्तराहित्ये सरकृत शर्त्युद्धिज्ञवामां असंस्कृता संयोग थतां संयोगज होप उत्पन्न थाय छे, तेम ज्ञ पूर्णर्थ लक्षयत्वा ते भानाहि पहाङ्गु पुण्यग्रन्थादित्ते स्त्रीशुद्धिहित्ता स्पर्शी पशु 'स्पर्शजः' स्पर्शज्ञ होप थय छे 'च' कारथी अन्य , पशु आग्नेयु दृष्ट्याहित्ता कुथ्या छे आ प्रकारे पूजामार्गां होपाने अनुदीने अकितामार्गनिवेद निराकरण 'न मन्तव्याः कथञ्चन' पदे करे छे के ते होतो अकितामार्गसां न भानवा-५. नि

१. "कृष्णातपर नास्ति देव वस्तुतो दोषवर्जितम्" २. "अपसर्पन्तु ते भूता" ३. "तोट चासनम्" ४. "प्रातर्होम च कृत्वैव कृत्वा वा ब्रह्मयज्ञकम् यद्वा माध्याद्रिकं कृत्वा पूजयेतप्तं" ५. "पूजादिना ब्रह्मसोकम्" ६. "आब्रह्मपुनरावर्तिनोर्जुनः" ७. "यस्य

॥१॥ अटलाथी ज निराकरण सिद्ध थाय छे, तथापि पुन. 'कथञ्चन' शब्दे पूल.
सम्भावना पशु अजितमार्गमां नथी एम अर्थ कठोरो. होपसम्भावनामा पशु अभावमो
॥२॥ शहस्रम्बन्धकरणात्' पहे भर्ते कठोरो ज छे. 'पूजमार्गमां पूजार्थे होपनिरा-
पारा, कठोरा छे तेन तथाने शुद्धभिन्नमार्गमा भगवनिरेत्तमाव ज सेवार्थ सर्वदेव-
ज्ञानम्ये !' एम शहु थाय तो समाधान इथीम्ये छीम्ये क 'अदोक्षामां अनर्थोपत्तम
।' 'वयनथी अने भनिय अजित रवतः ज श्वपाङ्गोने पशु सम्भवथी पवित्र करे छे'॥२
॥३॥ अजितमार्गमां रवतः ज सर्वदेवपनिवर्तक छे. डिग्य, अजितमार्गमां सेव्य पुरुषोत्तम ज
। तद्विभूतिरूप सेव्य नथी, ते पुरुषोत्तम ज सर्वदेवतमाना सर्वदेवरहिन निर्दृष्ट्युर्धुण्डु-
थी तनिवेहने तत्सम्बन्ध थतां सर्वाभना सर्वदेवपनिवृत्तिमां शु कठनु ? तेथी
. प्रश्नद्विजेता स्वरूपत्तरुपयुमा 'भगवदीयत्वने ज परिसामात्तसर्वार्थ तेम्ये छु'॥३
अपनो अवधि कठोरो. छे. यत्र भगवदीयत्वमाव ज सर्वपुरुषार्थतुच्छकरणु छे तत्र
भगवनिरेत्त ईमुतिकन्याये ज सर्वदेवपनिर्वर्तक सिद्ध छे, तेथी वृथावदग्ने शु ? सर्व
। अथ पूल तो कर्मभार्गनी अर्न. पानिनी हेवाथी ते अजित नथी. कर्मभार्गने भगवत्-

अभाव हेवाथी ते सहेय, पशु छे. 'भगवत्पूजना विधानथी निर्देशन छे' एम ज्ञे कहेता
इ तो अस्य, अवशु करो. पूजमार्गमां पूजय विभूतिरूप हेवाथी तत्र शुद्धपुरोत्तमत्वनो
अभाव हेवाथी पूजमार्गपूजय सर्वाभना सर्वदेवपनिवर्तक नथी, तत्र आवाहनाहि
वेसर्जनान उपचार उवचमत्वानीन हेवाथी पूजमार्गपूजय तो पुरुषोत्तमनी विभूतिमाव
छे, पुरुषोत्तम तो 'हु नहि वेह, नहि तपेऽ' एक अजितम्ये ज आव छु'॥४ धृत्याहि वयने उवच
अनन्य अजितने अपीत छे. तहनिरित भन्नाहिने पशु अपीत पुरुषोत्तम नथी एम पशु एक
महाद ज वैवक्षण्य छे. डिग्य, पूजमार्गमां पूजयहेवतनो विनियोग मोडोनोच्याटनाहि लौकिक कार्यमां
पशु अवश्य छे, पूजयहेवतामनन्ता अवश्युमा खेडु अदित्याहि 'धर्मेनु' अवश्यु थाय छे, अने सर्वनि-
यामक सर्वेव अद्विभिर्मोपास्य आनन्दमावउपाद्युमेद्वाहिपुरुषोत्तमना सेवकमां तो अदित्याहि
धर्मो सम्भवना पशु नथी तेथी गीतामा पशु भगवानं आज्ञा करी 'सर्व भूतोमां हु सम छु',
रे नथी डाई दृष्ट्य के नथी डाई प्रिय, जेओ भने अजितम्ये भन्ने छे तेओ भारामां छे अने
जुओमां छु' तेम ज श्रीभद्रागवतमा 'हेव अनुर अनुर अनुर यक्ष वा गन्धर्व पशु सुकृत्तना
स्वावर्द्धं'।। स्वस्तिमान थय छे जेम अमे॒ एम ग्रन्थाहात्ययी पशु अजितमार्गनु अने
गारन्थ निर्हायु ज छे आथी अधिक क्षां पर्यन्त कठनु ? आ हिंसा. (३)

अजितमार्गमां निवेदनथी ज सेवाप्रतिअनन्धक सर्व द्वैपनी निवृति थाय छे एम हेतुथी
दत्याहिनी अन्ना करे छे.

"अनर्थोपगम साक्षात्काल्येगमयोक्त्वे !" ॥२॥ "भक्तिपुनाति भविष्यता श्वपाकानपि सम्भवात्" ॥
"तिक्त्वेनैव अर्त्यामसवाथी !" ॥३॥ "नाह वेदैन तपसा !" ॥४॥ "मत्त्वाहमेकया आश्वः !" ॥
एडोने 'अनन्य अजित' ना लक्षण्युनु पशु व्यान नथी, तेथी हेवान्तरपूज अष्टिमार्गमां अडावे छे.
ज अष्टिमार्गीय स्त्रीये वैवृत्तिये विरोध ज आवये तेनु पुरुषोत्तमसेवकत्व पशु केम भनायै ॥
। सर्वभूतेनु न मे द्वेष्योस्ति न प्रिय । ये भनन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चायहम् ॥
"नयो वा यक्षो गन्धर्व एव वा । भगवन् सुकृत्तन्त्रण स्वस्तिमान् स्वाद् यथा वैषम् ॥"

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन । असमर्पितवस्तुनां तस्माद् वर्जनमाचरेत् ।

श्लोकार्थः—प्रकाशन्तरे-भीमु इम रीतिये-सर्व दोषनी निवृत्ति न वस्तुनो त्यग करेते, (४)

श्रीगोकुलेश्वरीका—‘अन्यथा’-भक्तिभागभाँ निवेदन विना-पर्व है नथीं ‘कथञ्चन’ शब्द प्रकाशन्तरने व्यवहास-निरास-उत्तराने कठये, एम से सर्वदोषनिवृत्तिने कठये अथं यावज्ञुव हेषसङ्कान्तिना अभावार्थे तादृश निवेदीन ‘असमर्पितवस्तुनाम्’ मृत्युहिंसे आज्ञा करे छे, अब भाग्यभाँ लगवत्सम्भवन्द शुक्त वस्तुनो संसर्ग ज देष्टरूप हे, तेथी निज अर्थे लगवत्समर्पित व वर्जन-त्यग-आचरेत् आयरतु-उत्तरु, असमर्पितवस्तुनो संसर्ग पर्यु न कर

‘ए प्रकारे असमर्पित वस्तुभावना यागे अथे तादृश निवेदीना लौकिके व्यवहारनी केवी रीतिये सिद्धि थगे एम आकड़ा थाय तो तादृशनी व्यवहारिसिद्धि ‘निवेदिभि’ ईत्याहिंसे आज्ञा करे छे.

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कार्यमितिस्थितिः ।

न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ॥५॥

श्लोकार्थ—निवेदीओ-ऐओ निवेदन करेतुं छे तेमणे-समर्पणे ज सर्व कार्य करेतुं एव स्थिति-मर्यादा-हे, हेतना पर्यु देव भगवानने सामिलुकत्समर्पण थान् एम सम्भव नथीं। (५)

श्रीगोकुलेश्वरीका—‘निवेदिभि’-२२भाग्यानुसार लेभणे आत्मा निवेदो छे एम निवेदीओ-‘सर्वम्’-लौकिक अने वैदिक-आल्याख्योजनार्थ स्वेषभोगार्थ अने आद्यागाहिनार्थ पर्यु निविहित पादिक्षिक सर्वं निवेद्यैव भगवानने निवेदीने ज अभवान्तना निवेदनन्तर पर्यु ज-उत्तरूप

१ “अथे तादृश निवेदीना लौकिक अने अलौकिक व्यवहारनी सिद्धि केवा रीतिये थगे आकड़ा थाय तो तादृशनी व्यवहारिसिद्धिनो प्रकार ‘निवेदिभि’ मृत्युहिंसे आज्ञा करे छे” २ “हेवाथी सर्वे ज पुष्टिभाग्याओ ए सर्वे लौकिक अलौकिक व्यवहार सिद्ध करवा ३ थतुं नथीं, परन्तु औहिक्षुभिमर्जनार्थ ए लौकिक्षुद्धार्थ पुष्टिभाग्यभाँ पर्यु लौकिक्षु प्राप्त थाय तो रसार्ताहितु तत्त्वार्थ करीते तदनन्तर अस्तर्पण न करतां पुष्टिं लौकिक्षु-जघुक्षुमे पर्यु तदलौकिक्षुहिक्षुयो ग्राइ ज प्रभुती आज्ञा अवश्य प्राप्त करतीक्षु ज्यारे आज्ञा करे त्यारे ज तेमनी आज्ञापुरसरज उच्याद्य लौकिक्षुहिक्षु अर्थ पर्यु करतां, अहं भाँ प्रथम निवेदन पश्चात् लौकिक्षुहिक्षु कार्य पर्यु तादृश लौकिक्षु-जघुक्षुमे युधिष्ठिरराज निवेद परन्तु जे पुष्टिपुष्टि अने शुद्धपुष्टि वैष्णवे ‘नान्य’ क्वापि कदम्बन् धृत्यन्त श्रीमद्भव ५. नि आज्ञाने ज शिरसा स्तीर्तारी छे अने श्रीगोकुलेशना सेनारम्भणु निना डोछ पर्यु हेशं तोष पर्यु डालामां अन्य धर्म ज नथी ए सिद्धान्त प्रभुत्पापार्थी लेभने हुद्यारुढ थर्त अनन्य लाग्यवान् भगवदीमो तो अलक्षणाहि हेने पर्यु रवाने पर्यु अर्थे नहि तो ते

। नारनुँ करणु ए निवेदन. श्रीमद्भागवतनासमस्तन्मां विष्णुने निवेदितअन्ते
 तु, पिण्डोने पथु ते ज आपवु, ते अनन्तत्वार्थं कलाय 'छ' अम स्मरणु
 १३८ ॥ ४७ ॥ इथति-भर्याई-हे, अनुवल्लभ्य आजा ते इथति-भर्याई, जेग
 इरो. इने शर्य उत्तरार्थी कर्ता वैक्षि हेषभाइ थाय छे, तेम अन पथु लक्षितभार्याई
 ४७ ॥ ५८ ॥ इत्तरार्थी पथु लक्षितभार्याईपलाइ थाय छे ए जल्लाववाने 'हिति'
 ५९ ॥ इत्तर इयुः अम परतुमात्रनु निवेदनात्प्रथक्तव क्षेत्रे क्षायिद् भगवद्वर्त्तसम्प्राप्ति
 गृहमां रिथन डाइक आदके वा २२याहिये अज्ञानार्थी स्वार्थे वा अन्यार्थे विनियोजयु
 सम्प्राप्ति परतु सामिलुक्त-अर्थलुक्त-ययुः, अने ते अवशिष्टने असमर्पित
 परेगार्थ समर्पणाने छुळे तो लक्षितभार्यामां तसमर्पणाना निषेधनी 'न मतम् ५९
 देवस्त्वं'-अलाहिए देव ते देवना पथु देव आराध्य पुरुषोत्तमने तेवुं समर्पणु
 नथी, हेवहेव प्रयुने सामि-अर्थ-लुक्ततुं समर्पणु सम्भत नथी. लक्षितभार्यामां
 ५९ ॥ ६० ॥ द्वृष्टिभार्याप्रथर्तक श्रीमहायार्थविष्णुने पथु ते सम्भत नथी, तेथी ते न ६०
 ६० ॥ ६१ ॥ रवेपयोगार्थ आजीन वस्त्राहिमार्थी रवेपयुक्त वस्त्राहि भगवान्ते समर्पणे रवेपयोग
 ६१ ॥ ६२ ॥ उत्तरु रवेपयोगार्थिणु-समर्पणु जे भगवान्ते करवा छुळे तो ते पथु 'सामिलुक्त'-
 लुक्तत-हे तेवुं पथु 'देवदेवने समर्पणु सम्भत नथी (५)

आ प्रकारे सामिलुक्तसमर्पणानो निषेध इथाने सर्वात्मना सर्वथा सदाकर्तव्यप्रकारनी आज्ञा
 स्मात् इत्याहिये करे हे.

तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ।

दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥ ६ ॥

न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ॥ ६ १ ॥

श्लोकार्थ.—तेथी सर्वकार्यमां सर्वपरतु समर्पणु आहिमा करवु. दत्तापहारवचन अने
 कांध पथु अरद्युं नहि ए वाक्य भिन्नमार्गपर छे. (६१)

अने श्रीमहाप्रभुज पथु तादश अनन्य सौभाग्यवान्ते तेनी हीनमध्यम आज्ञा
 ६२ ॥ अत अन यीडामा एवकार श्रीगेहुक्तेशो पथु ल्यान्त 'निवेद्य' साये ज प्रयोग्यो, परन्तु
 ताये प्रयोग्यो नहि, अर्थात् कार्यमेव अम आज्ञा न करी, परन्तु 'निवेद्य' अम
 कार्यम् नु नियमन न कर्तु, परन्तु निवेदन्तु ज नियमन कर्तुः. आर्थी अम निष्पत्ति
 ६२ ॥ वैक्षि सर्व ज कार्य प्रलुनिवेदन विना क्षायि न करवु. अनु तात्पर्य सर्वथा अम तो
 ६३ ॥ वैक्षि वैक्षिक्यादिः कार्य करवां ज, अर्थात् 'निवेदिनि समर्थैव' वाक्य E proposition
 proposition भानवार्थी भानात् विवेद थर्तु जाय छे अम आङ्गेन्यायविशारद तो
 ६३ ॥ शिं शिं ज. परन्तु केने भीमासानो गन्त नथी, जेने एवकारना अर्थतुं पथु आन
 ६४ ॥ नमतिना पथु समक्ष श्रीगेहुक्तेशना आ. परमनिगृह अर्थतो आविष्कार करवामां जे
 ६४ ॥ थेनो हुय तो श्रीगेहुक्तेश ज कृपा इरीते ते आविशतानी पथु क्षमा करो.
 ६४ ॥ श्रोनिवेदितात्रेन वष्टव्यं देवतान्तरम् । पितृभ्यक्षमि तद् देयं तदानन्तरं कल्पते ।

‘श्रीगोकुलेश्वरीका’—‘तस्मात्-पूर्वे असमर्पितवस्तुनो सम्भवं करी पछीथी अर्थभुक्तसमर्पण भणु न करु अभ मआजा करी तेथी—‘आदौ’ पूर्वे-४ ‘सर्ववस्तु’पटे भार्यापुनाहिनु भणु ‘समर्पण’ कर्तव्य छे, निवालान पूर्वे ज श्वेषयोगार्थ ज तेमतु निवेदन कर्तव्य छे, अज भ प्रारै पुत्रानी भ पुत्राहिनु भणु समर्पण इत्यव्य छे. ज्ञर्वकार्ये-सर्वशर्यनिभिते-ते ते कार्ये समर्पण इत्यु, समर्पण इत्यव्य इत्यने पशान् ते ते कमो कर्तव्य छे. अत्र क्रांति पूर्वे ५ ‘भक्तिमार्गमां भगवन्निवेदित ज वस्तुनो निवेदित्यै स्वार्थे इत्यव्य छे-अनिवेदित अभ नियम कुथो, परन्तु ऐकादशस्कन्धमां तेमो निषेध श्रवण छे, के आ निवेदित हीपावदेवाननो पणु उपरे ग इरवो नहि,^३ ए शङ्काने भार्गभेदै परिकल्पाने दक्ष ध्रुत्याहिनी आजा करे छे. ‘दत्तस्य’-दत्त नैवद्याहिनो—पुनः स्वार्थे ‘अपहार’-ग्रहण-२ ‘सकलं न ग्राह्यम्’ ‘दत्त वस्त्राहिनि’ भणु सकल न ग्रहणु इतिवाक्यम्^४ ए रम्भनि परम्^५-भित्तिमार्गपरत्वे-द्विधि भक्तिमार्गथी अतिरिक्त कर्म भार्गपरत्वे-‘मत्तम्’-१, अे छे के ते पूजामार्गमां भक्तिमार्गत्वे ज नहि हेतुवाथी निवेदनतु रवकृप ज तव निवेदनतु इथन भक्तिमार्गमां ज छे, अने तेथी ज श्रीभद्रामन्तमां ‘श्रवणे कीर्तनं’^६ भक्तिमां निवेदनतु^७ भणु इथन छे तेथी भक्तिमार्गमां ज निवेदन छे. अन्यत्र नदि, २ ऐकादशस्कन्धमां ‘द१२, सु१, शु१, शु१, प्राणु जे काहि होय ते परमाभाने निवेदनु’^८ हे उक्ष्य ! अहाभ वेदीना ए प्रकारना धर्मोभे भार्गमां भक्तिं जित्पत चाय छे, पछी कुपो अर्थ अवशिष्ट रहे छे^९ वयनथी भक्तिमार्गमां ज भक्तिमनकर्त्तवे निवेदनप्रकार इथो छे, तेथी-भक्तिमार्गमा तुरुने, ज सेव्य छे अने अन्व सेनक छे तेथी भक्तिमार्गमां सेवके भगदुभक्तुनथी-भगवद्बिष्णुथी-स्वनिर्णीक आवश्यक छे तेथी-अने उक्ष्ये भणु ‘आपे उपकृत भावा गन्ध वस्त्र अवहुङ्कारे भूषि अने आपनु उचित्त लेनरा अभे हासो’ ध्रुवाहि वयन इध्यु छे तेथी भणु-सुगवद्बिष्णु भोजन ज धारणे ज धारणे स्वपर्म छे,^{१०} भुक्तावशिष्ट ज उचित्त-हेतुवाथी भक्तिमार्गमां ज भार्गान्तरमां नहि-तासमर्पित भोजन छे, तेथी ज भगवाने भणु आजा करी छे के ‘पव, पु-११ इति, इति, जे कांध अने भजित्वी प्रकृष्टे आपे छे, ते-प्रताभानु भजिन्मे उपहृत-हु भोजन करु^{११} छु.’^{१२} ‘भजिन्मे उपहृत हु’ भोजन करु छु^{१३} वयनथी भक्तिमार्गमां ज भोजन आवश्यक छे, नहि के भक्त्यतिरिक्त पूजामार्गमां भणु, तेथी भजिन्मार्गनिरिक्त भार्गमां निवेदनपहो “नैवेद्याहिनुं धान” थाय छे, नदि के भक्तिमार्गवत् भमपितां अङ्गाकार, स्वसत्तानपरि परस्तातुं विपालन ते दान, ज्ञेम के अक्षयने जोलान करीजे छीजे तेमां स्वसत्तान

१. पुष्टिमार्गाना विरोधाभ्यामे आ संस्कृत ग्रन्थ ‘महाराज लायमेव केम’ ने प्र अलीन विचित्र अर्थ करी भूम्भो छे, तेथी विवेयद वायडे आ ग्रीष्मा सावधान चित्त आधुनिक पण्डितमन्य तो श्रीहृष्णुनो अने श्रीभद्रार्थार्थ्यवरणुनो भणु भेद भानीने ते आकृ पने छे ते भणु अरुन्तुह ज छे, तेथी ज अत्र विशेषनः भावधानतानी प्रार्थना, दीपावलोक मे नोपयुज्यान्निवेदितम्।” ३ “दारानसुतानग्नहानपाणानवृत् परस्मै निवेद ४. “एवधर्मेन्मनुष्याणामुख्वारमनिवेदिनाम् अद्य सञ्जायते भक्ति. कोन्योर्थोस्यावशिष्यते।” ५. नि उचित्त लेता भावधान उपहृत वस्तत, आ विचारणे भरो ! ६. यत्र पुष्प फल तोट भक्त्या प्रयच्छति । तदह भक्त्युपहृतमश्वामि प्रयत्नमनः । ७ भक्त्युपहृतमभास्मि ।

दान उत्तर छे, पुनः ते जौ आपका उपलोगार्ह एही संहारी तथी, तेम जोड़ा हुआ
भागीभां नैवेद्य हिंसा पशु दान लखुं, अनो तेथी ज 'इत्तापहारवचनम्'
विषय छे, दातापहारनिषेधार मृतिवासी छे, अने तेथी ज नैवेद्यातिरिक्त 'भगवान्से
य'।^{१५} य 'सकले' सदक 'न ग्राह्यम्' आद्य तथी अम जे कुछु तेनो निनसार्ग परवे
।^{१६} अभित्तमार्गातिरिक्त पूलदिभार्गपरवे-'मर्तम्' सर्व प्रमाणे सम्भव छे,
जौ प्रमाणु तो 'आपे उपभुजन' प्रत्यहि पूर्वे कथायुं ज छे. (५३)

अभित्तमार्गातिरिक्त भागीभां पूर्यनैवेद्यातिरिक्त अग्रहण सोपयतिक प्रतिभादीने अभित्तमार्ग भा
उटे ज भगवदीयेनो व्यवहार कर्तव्य छे—अन्यथा नहि—अम जाणुवानो
धार्याहिनी आजा करे छे.

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति ॥ ७ ॥

. यो कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥ ७१ ॥

थि—दोऽनां सेवकोनो व्यवहार ज प्रकारे प्रकृष्टे सिद्ध थाय ते प्रकारे समर्पण ईर्णाने
थी सर्वेना अज्ञाना थाय छे (५३)

गोकुलेश्वरीका 'सेवकानां'—भगवानीय दासोनो—भगवद्विष्णु ज आवृष्टे—अन्य
हु अद्वा 'व्यवहारः' प्रश्न जेम दोऽनां 'प्रकर्त्त निःशुष्टु सिद्धयेत्' सद्विद्य थाय तेम—अतिप्रसिद्धताये—
गङ्गाइनाम्—सेवकोने सम्भवि इनु. निःशुष्टु ज व्यवहारसिद्धिनो प्रकृष्ट. तेवा प्रकारे व्यवहार
थी ज 'सर्वेषां' सर्व भगवदीयनी 'ब्रह्मता' निर्दृष्टना थाय छे 'अति निर्देष अने समर्पण'^{१७}
मे व्यवहारी अभित्तमार्गभां सर्वेनु निर्दृष्ट अते निवेदनानानं समत्व शापित थाय छे, सर्वेनु
अलीयत्व-भगवदीयत्व-थाय छे यद्यपि उपनिषद्भां अज्ञाना अनन्त ज धर्मी निरुपित छे तथापि
अन अभित्तमार्गभां 'थेवोपयेति निर्दृष्ट' अने 'भगवदीयत्व समत्व' ये धर्मद्वयनो ज निर्देष
मज्जोपयेति ईर्णी. (५३).

'अभित्तमार्गभां प्रवेश सते पशु सत्त्वाद्विगुणभेदे प्रवृत्तिना वैपन्थथी भगवानीयत्व सते पशु
सर्वेनी समना ईरे प्रस्त्रे' अम आशुडीने गङ्गावम् प्रत्याहि श्वोके गङ्गाइष्यानो ते शुद्धाने
परिहरे छे.

गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ॥ ८ ॥

‘गङ्गात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि ॥ ८१ ॥

हार्य—सर्वदोषनी गुणदोषवर्णना गङ्गात्वपर्यन्त ज, तदनन्तर ते ते वर्णना जेम
त्रूप्या—निरूपणी—डे-होपने निरूप्या नथी—जेम अति पशु युक्त ज छे.

गोकुलेश्वरीका—जेम सर्वदोषाणां—भर्तवस्त्रदोषनी 'गुणदोषादिवर्णना' गुणदोषाहिनी
पर्यन्त ज थाय छे यत्र पर्यन्त 'गङ्गात्वम्'—गङ्गाप्रवेश—नथी, 'गङ्गात्वे' गङ्गाप्रवेश—
जलनु गङ्गात्वे ज सर्व धर्मीप्रियेगित थाय छे, तद्वृत्त यत्रपर्यन्त अभित्तमार्गीय
. इत निवेदन हेतु नथी तत्रपर्यन्त ज भगवद्भजनभां तेना गुणदोषाहिनी विचार सम्भवे
अवदीयत्व सम्भव थाना ज पूर्वे आशुडीन सत्त्वाद्विगुणभेदे इत होए भजनशाधक सम्भवता
थी ज श्रुतिभां पशु 'जेने जे वरे छे तेनो' अम परस्तु ज भगवद्प्राप्तिभां हेतु

